Shodh Prabha: A Multidisciplinary Journal
ISSN: 3108-2726 (Online), 3108-2890 (Print), Volume-1, Issue-4, (Jul – Aug) 2025

नागार्जुन के काव्य में जनचेतना और राजनीतिक प्रतिरोध का स्वर

शालिनी यादव
पूर्व शोधार्थी हिन्दी विभाग, वी. एस. एस. डी. कॉलेज कानपुर

सारांश

नागार्जुन आधुनिक हिंदी कविता के उन विरल रचनाकारों में हैं जिनके यहाँ कविता सामाजिक यथार्थ की व्याख्या भर नहीं करती, बल्कि शोषण, असमानता और सत्ता के विरुद्ध जनपक्षीय हस्तक्षेप का माध्यम बन जाती है। प्रस्तुत आलेख का केंद्रीय प्रश्न यह है कि नागार्जुन की कविता में जनचेतना किस प्रकार निर्मित होती है और राजनीतिक प्रतिरोध किन काव्यात्मक उपकरणों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाता है। इस प्रश्न की पड़ताल उनकी 'प्रतिबद्ध', 'अकाल और उसके बाद', 'प्रेत का बयान', 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी', 'बाकी बच गया अंडा', 'मंत्र', 'शासन की बंदूक' और 'हरिजन-गाथा' जैसी कविताओं के विश्लेषण द्वारा की गई है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नागार्जुन के यहाँ जनता कोई अमूर्त राजनीतिक संज्ञा नहीं, बल्कि किसान, मजदूर, भूखा परिवार, दलित समुदाय, निम्न-मध्यवर्गीय कर्मचारी और सत्ता से ठगा हुआ सामान्य नागरिक है। उनका राजनीतिक प्रतिरोध व्यंग्य, लोकभाषा, संवाद, पैरोडी, नाटकीयता, प्रतीक और प्रत्यक्ष संबोधन से निर्मित होता है। यद्यपि उनकी कुछ तात्कालिक राजनीतिक कविताओं में घटनापरकता, सपाट कथन और वैचारिक आवेग की सीमाएँ दिखाई देती हैं, तथापि जनता के अनुभव को कविता के केंद्र में प्रतिष्ठित करने तथा लोकतांत्रिक सत्ता को निरंतर प्रश्नांकित करने में उनका योगदान असाधारण है।

बीज शब्द- नागार्जुन, जनचेतना, राजनीतिक प्रतिरोध, जनकविता, व्यंग्य, सत्ता-विमर्श, सामाजिक यथार्थ।

जनजीवन से संबद्धता और जनचेतना का काव्यात्मक आधार

आधुनिक हिंदी कविता में नागार्जुन की विशिष्टता केवल इस बात में नहीं है कि उन्होंने किसानों, मजदूरों, दलितों, निर्धनों और राजनीतिक रूप से वंचित समुदायों के विषय में लिखा। उनकी वास्तविक विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि ये समुदाय उनकी कविता में करुणा प्राप्त करने वाले निष्क्रिय पात्र नहीं रहते, बल्कि इतिहास और सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय शक्तियों के रूप में उपस्थित होते हैं। इसीलिए उनके काव्य में जनचेतना का अर्थ जनता के दुःखों का भावुक चित्रण नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों, संस्थाओं और सत्ता-संबंधों की पहचान है जो उस दुःख को जन्म देते हैं। नागार्जुन की कविता यह प्रश्न उठाती है कि राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद भी भूख, जातिगत हिंसा, बेरोजगारी, नौकरशाही, सामंती शोषण और औपनिवेशिक मानसिकता क्यों बनी रही। उनकी कविता में प्रतिरोध इसी प्रश्नाकुलता से जन्म लेता है।

नागार्जुन का जीवन किसान आंदोलनों, राजनीतिक संघर्षों, यात्राओं और कारावास के अनुभवों से निर्मित हुआ था। इस प्रत्यक्ष सामाजिक संपर्क ने उन्हें जनता को दूर से देखने वाला सहानुभूतिशील बुद्धिजीवी बनने से रोका। वे जनता के जीवन में सहभागी कवि थे। उनके यहाँ जनपक्षधरता किसी दल-विशेष के घोषणापत्र का अनुसरण नहीं करती, बल्कि जीवनानुभव और सामाजिक संबंधों से विकसित होती है। 'प्रतिबद्ध' कविता उनकी काव्य-दृष्टि का एक प्रकार का आत्मस्वीकृत घोष है—

"प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ—
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त

संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ।"[1]

इन पंक्तियों में प्रतिबद्धता का अर्थ विचारधारा के प्रति यांत्रिक निष्ठा नहीं है। कवि 'बहुजन समाज' की प्रगति से जुड़ता है, परंतु वह जनता का रोमानी महिमामंडन भी नहीं करता। "अविवेकी भीड़ की भेड़िया-धसान" का विरोध यह स्पष्ट करता है कि जनकवि होने का अर्थ प्रत्येक सामूहिक आवेग का समर्थन करना नहीं है। नागार्जुन जनता के अधिकारों के पक्षधर हैं, किंतु जनसमूह के भीतर उपस्थित अंधानुकरण, उन्माद और विवेकहीनता के प्रति भी सजग हैं। इस प्रकार उनकी जनचेतना आलोचनात्मक है। वह सत्ता से ही नहीं, अपने वैचारिक समुदाय और स्वयं कवि के संभावित व्यामोह से भी प्रश्न करती है।

कविता में आगे कवि "अपने आपको भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने" की आवश्यकता स्वीकार करता है। यह आत्मालोचन नागार्जुन की जनप्रतिबद्धता को नैतिक विश्वसनीयता प्रदान करता है। उनका कवि-वक्तव्य यह दावा नहीं करता कि उसने अंतिम सत्य प्राप्त कर लिया है। वह निरंतर संबद्धता, आत्मपरीक्षण और अनुभव-संशोधन की प्रक्रिया में है। इसी कारण नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ कई बार उनके अपने पूर्व राजनीतिक विश्वासों से भी असहमति व्यक्त करती हैं। वे जिन नेताओं और आंदोलनों का किसी समय समर्थन करते हैं, परिस्थितियों के बदलने पर उनकी आलोचना करने में संकोच नहीं करते। उनके लिए व्यक्ति या राजनीतिक दल से अधिक महत्त्वपूर्ण जनता का हित है। इस जनचेतना का दूसरा आधार भूख और अभाव का सूक्ष्म अनुभव है। 'अकाल और उसके बाद' हिंदी कविता में अकाल की त्रासदी का अत्यंत संक्षिप्त, किंतु मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है—

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।"[2]

कविता में अकाल के कारणों का प्रत्यक्ष राजनीतिक विवरण नहीं है। न सरकार का नाम है, न प्रशासन का, न खाद्यान्न-व्यवस्था का। फिर भी यह कविता गहरे अर्थ में राजनीतिक है, क्योंकि वह भूख को निजी दुर्भाग्य नहीं मानती। चूल्हा, चक्की, कुतिया, छिपकली और चूहे मिलकर उस घरेलू संसार का निर्माण करते हैं जिसमें खाद्यान्न का अभाव समस्त जीवन-व्यवस्था को निश्चेष्ट कर देता है। चूल्हे का 'रोना' और चक्की का 'उदास' होना मानवीकरण मात्र नहीं है; इनके माध्यम से भूख का प्रभाव मनुष्य से आगे पशु, कीट और निर्जीव वस्तुओं तक विस्तृत हो जाता है।

कविता की अगली पंक्तियों में जब घर में दाने आते हैं, धुआँ उठता है, आँखें चमकती हैं और कौआ पंख खुजलाता है, तब भोजन केवल पेट भरने की वस्तु नहीं रहता। वह जीवन की पुनर्वापसी का संकेत बन जाता है। नागार्जुन भूख का अमूर्तन नहीं करते; वे उसे घरेलू वस्तुओं और गतिविधियों में दृश्य बनाते हैं। यही उनकी जनचेतना का महत्त्वपूर्ण गुण है। आर्थिक असमानता को समझाने के लिए वे जटिल सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि एक बंद पड़े चूल्हे के माध्यम से समूची सामाजिक व्यवस्था की विफलता उद्घाटित कर देते हैं।

'प्रेत का बयान' में यही अभाव निम्न-मध्यवर्गीय कर्मचारी, विशेषतः अल्पवेतनभोगी शिक्षक के जीवन के माध्यम से सामने आता है। कविता में मृत शिक्षक का प्रेत यमराज के सामने अपने जीवन और मृत्यु का विवरण देता है। उसकी मृत्यु किसी एक रोग से नहीं, बल्कि गरीबी, भूख, चिंता और उपेक्षा की सम्मिलित प्रक्रिया से हुई है। नागार्जुन यहाँ व्यंग्यात्मक संवाद का सहारा लेते हैं। प्रेत की कथा से स्पष्ट होता है कि जिस समाज में शिक्षक स्वयं सम्मानजनक भोजन और चिकित्सा से वंचित

हो, वहाँ शिक्षा, नैतिकता और राष्ट्रनिर्माण के आदर्श खोखले सिद्ध होते हैं। शिक्षक की दयनीय स्थिति किसी व्यक्ति की असफलता नहीं, उस व्यवस्था का प्रमाण है जो ज्ञान देने वाले श्रमिक को भी जीविका की न्यूनतम सुरक्षा नहीं देती।

नागार्जुन की जनचेतना ग्रामीण जीवन तक सीमित नहीं रहती। रिक्शा और ट्राम चलाने वाले श्रमिक, कुली, कर्मचारी, छात्र, बेरोजगार युवक और निम्न-मध्यवर्गीय परिवार भी उनकी कविता में आते हैं। 'खुरदरे पैर' में रिक्शाचालक के फटे और कठोर पैरों पर कवि की दृष्टि टिकती है। श्रम की महत्ता पर कोई अमूर्त प्रवचन देने के स्थान पर वे उस शरीर को देखते हैं जिस पर नगरीय जीवन की गति निर्भर है। खुरदुरे पैर केवल गरीबी के चिह्न नहीं, उत्पादन और परिवहन व्यवस्था को चलाने वाली अदृश्य शक्ति के प्रमाण हैं। आधुनिक नगर जिन श्रमिकों के श्रम से संचालित होता है, उन्हीं को सभ्य समाज अपनी दृष्टि से बाहर रखता है। कवि इस अदृश्यता को तोड़ता है।

स्वतंत्रोत्तर सत्ता, राजनीतिक विडंबना और व्यंग्य का प्रतिरोध

नागार्जुन की राजनीतिक कविता का सबसे तीखा स्वर स्वतंत्रता के बाद विकसित सत्ता-संरचना की आलोचना में सुनाई देता है। राष्ट्रीय आंदोलन के समय स्वतंत्रता को सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और औपनिवेशिक दासता से मुक्ति का पर्याय माना गया था। किंतु स्वतंत्रता के बाद शासक वर्ग की जीवन-पद्धति, नौकरशाही, आर्थिक नीति और राजनीतिक व्यवहार में औपनिवेशिक संस्कारों की निरंतरता ने जनता के भीतर मोहभंग उत्पन्न किया। नागार्जुन ने इस मोहभंग को निराशा में बदलने के बजाय व्यंग्यात्मक प्रतिरोध में रूपांतरित किया।

'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' इस प्रतिरोध का प्रसिद्ध उदाहरण है। ब्रिटिश महारानी की भारत-यात्रा के अवसर पर लिखी गई कविता में नागार्जुन ने राजनीतिक नेतृत्व की औपनिवेशिक मानसिकता पर सीधा प्रहार किया—

"आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहरलाल की
रफ़ू करेंगे फटे-पुराने जाल की,
यही हुई है राय जवाहरलाल की।"[3]

यहाँ 'पालकी ढोना' केवल किसी अतिथि के औपचारिक स्वागत का संकेत नहीं है। पालकी सामंती और औपनिवेशिक दासता का प्रतीक बन जाती है। जिन लोगों ने विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया था, वही स्वतंत्र राष्ट्र में पूर्व शासक के स्वागत में प्रजा-सदृश व्यवहार कर रहे हैं। "रफ़ू करेंगे फटे-पुराने जाल की" पंक्ति औपनिवेशिक संबंधों की उस मरम्मत की ओर संकेत करती है जिसमें राजनीतिक स्वतंत्रता के बावजूद मानसिक और सांस्कृतिक अधीनता बनी रहती है।

कविता की लोकधर्मी लय और बार-बार लौटती टेक इसे जनगीत जैसी स्मरणीयता प्रदान करती है। यह न तो गंभीर राजनीतिक भाषण है और न गोपनीय वैचारिक टिप्पणी। इसे सार्वजनिक रूप से बोला, गाया और दोहराया जा सकता है। नागार्जुन का व्यंग्य इसलिए प्रभावशाली है कि वह सत्ता के गौरवपूर्ण समारोह को जनता की दृष्टि से देखता है। राजकीय प्रकाश, भोज, सजावट और सम्मान के पीछे भूखी जनता की छवि उपस्थित रहती है। राजनीतिक नेतृत्व जिसे राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के रूप में प्रस्तुत करता है, कवि उसी को आत्महीन प्रदर्शन के रूप में उद्घाटित करता है। नागार्जुन का राजनीतिक साहस इस तथ्य में भी निहित है कि वे नेताओं को अमूर्त पदनामों के पीछे सुरक्षित नहीं रहने देते। वे नाम लेकर आलोचना करते हैं। इससे उनकी कविता तत्कालीन राजनीति से प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करती है। यद्यपि नामोल्लेख के कारण ऐसी कविताओं पर तात्कालिकता का आरोप लगाया गया, किंतु उनके व्यंग्य का लक्ष्य किसी नेता का निजी चरित्र नहीं, बल्कि सत्ता का वह व्यवहार है जिसमें जनता से दूरी, अवसरवाद, विलासिता और औपनिवेशिक अनुकरण सम्मिलित हैं।

'बाकी बच गया अंडा' में नागार्जुन राजनीतिक दमन और जनांदोलन के विघटन को बच्चों की गिनती जैसी सरल संरचना में व्यक्त करते हैं। अंडों की घटती संख्या गिरफ्तारियों, दमन और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के क्रमिक निष्कासन का रूपक बन जाती है। कविता की लय खेल और बालगीत की याद दिलाती है, किंतु उसका आशय भयावह है। सत्ता जब विरोध करने वालों को एक-एक करके समाप्त करती है, तब लोकतंत्र का बाहरी ढाँचा बचा रह सकता है, परंतु उसके भीतर सक्रिय नागरिकता और असहमति का स्थान सिकुड़ जाता है। नागार्जुन जटिल राजनीतिक दमन को ऐसी लोकपरिचित संरचना में प्रस्तुत करते हैं जिसे सामान्य पाठक तुरंत ग्रहण कर सके।

'शासन की बंदूक' में दमनकारी सत्ता का प्रतीक बंदूक है। वह शासन जो जनता की सहमति से वैधता प्राप्त करता है, अंततः उसी जनता पर नियंत्रण रखने के लिए हथियार का सहारा लेता है। नागार्जुन बंदूक की बाहरी विराटता के सामने जनप्रतिरोध की छोटी दिखने वाली, किंतु जीवंत शक्तियों को रखते हैं। कविता में कोकिला की कूक का प्रसंग यह संकेत करता है कि रचनात्मकता और जीवन की आवाज को बंदूक पूरी तरह मौन नहीं कर सकती। बंदूक भय उत्पन्न कर सकती है, शरीर को घायल कर सकती है, सभा को तितर-बितर कर सकती है; किंतु वह जनस्मृति, गीत, प्रश्न और असहमति को स्थायी रूप से समाप्त नहीं कर सकती।

नागार्जुन की राजनीतिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि वह लोकतंत्र और सरकार को एक ही वस्तु नहीं मानती। सरकार लोकतांत्रिक चुनाव से बनी हो सकती है, पर उसका प्रत्येक निर्णय लोकतांत्रिक नहीं होता। लोकतंत्र का वास्तविक आधार जनता की सक्रिय भागीदारी, आलोचना का अधिकार और सत्ता से प्रश्न करने की स्वतंत्रता है। इसीलिए नागार्जुन की कविता निर्वाचित नेतृत्व की भी उतनी ही कठोर आलोचना करती है जितनी औपनिवेशिक या सामंती शासन की। उनके लिए स्वतंत्रता कोई एक बार प्राप्त कर ली गई ऐतिहासिक उपलब्धि नहीं; वह निरंतर संरक्षित और विस्तृत किया जाने वाला जनाधिकार है।

इस संदर्भ में उनकी राजनीतिक कविता को केवल दलगत प्रतिक्रिया मानना उचित नहीं होगा। वे समय-समय पर विभिन्न राजनीतिक धाराओं के निकट आए, उनसे प्रभावित हुए और उनसे असहमत भी हुए। उनके राजनीतिक निर्णयों में परिवर्तन दिखाई देता है, पर जनता के प्रति उनकी मूल निष्ठा अपेक्षाकृत स्थिर रहती है। यह अस्थिरता अवसरवाद की अपेक्षा अनुभव से सीखने और अपने पूर्व निर्णयों की समीक्षा करने की प्रवृत्ति का संकेत भी हो सकती है। हालाँकि उनके कुछ आलोचकों ने इसे वैचारिक असंगति माना है, पर उनकी कविता में आत्मसंशोधन और तत्काल प्रतिक्रिया का यह स्वभाव जनकवि की बेचैनी से जुड़ा है।

भाषा, लोकशिल्प और राजनीतिक प्रतिरोध की काव्य-प्रविधियाँ

नागार्जुन का राजनीतिक प्रतिरोध केवल विषयवस्तु में नहीं, भाषा और शिल्प में भी निहित है। सत्ता की भाषा प्रायः औपचारिक, अस्पष्ट, नियंत्रित और आत्ममहिमामूलक होती है। वह नीतिगत विफलता को उपलब्धि, दमन को अनुशासन और अवसरवाद को राष्ट्रीय हित के रूप में प्रस्तुत कर सकती है। नागार्जुन इस भाषा का प्रतिरोध लोकशब्दों, मुहावरों, व्यंग्य, गाली के निकट पहुँचते संबोधनों, पैरोडी और अनगढ़ प्रतीत होने वाली वाक्य-संरचनाओं से करते हैं। उनकी कविता शिष्टता की उस परिभाषा को अस्वीकार करती है जो सत्ता की हिंसा पर मौन रहते हुए कवि की तीखी भाषा को असभ्य घोषित करती है।

'मंत्र' कविता में धार्मिक अनुष्ठान, राजनीतिक नारे, प्रशासनिक शब्दावली और वैचारिक घोषणाएँ एक विचित्र कोलाज में बदल जाती हैं। कविता की आरंभिक और मध्यवर्ती संरचना में 'ओं' की पुनरावृत्ति धार्मिक मंत्रोच्चार की ध्वनि उत्पन्न करती है, किंतु उसके साथ असंगत राजनीतिक और आर्थिक शब्द जोड़ दिए जाते हैं—

"ओं क्रांतिः क्रांतिः क्रांतिः सर्वग्वं क्रांतिः
ओं शांतिः शांतिः शांतिः सर्वग्वं शांतिः
ओं भ्रांतिः भ्रांतिः भ्रांतिः सर्वग्वं भ्रांतिः
ओं बचाओ बचाओ बचाओ बचाओ
ओं हटाओ हटाओ हटाओ हटाओ
ओं घेराओ घेराओ घेराओ घेराओ।"[4]

यहाँ क्रांति, शांति और भ्रांति समान मंत्रात्मक संरचना में आ जाती हैं। इससे राजनीतिक शब्दों का खोखलापन उजागर होता है। जब 'क्रांति' केवल नारा, 'शांति' सत्ता का औपचारिक आश्वासन और 'भ्रांति' जनमत को नियंत्रित करने की प्रक्रिया बन जाती है, तब उनके अर्थ में अंतर धुँधला पड़ जाता है। नागार्जुन भाषा के इसी अवमूल्यन पर व्यंग्य करते हैं।

'मंत्र' की संरचना में एक ओर संस्कृतनिष्ठ धार्मिक पदावली है, दूसरी ओर अंग्रेजी, बाजार, उद्योग, हथियार और राजनीतिक दलों से जुड़े शब्द। इस मिश्रण के माध्यम से कविता उस गठबंधन को पहचानती है जिसमें धर्म, पूँजी, राजनीतिक सत्ता, प्रचार और हिंसा एक-दूसरे के सहायक बन सकते हैं। मंत्रोच्चार की पवित्रता के भीतर स्वार्थ, वंशवाद, दमन और सत्ता-सुरक्षा का अश्लील यथार्थ प्रवेश कर जाता है। कविता का हास्य पाठक को पहले चकित करता है, फिर उसे राजनीतिक भाषा की चालाकी पहचानने के लिए बाध्य करता है। नागार्जुन की लोकभाषा का अर्थ केवल ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग नहीं है। लोकधर्मिता उनके काव्य-संप्रेषण, लय, संबोधन और दृष्टिकोण में भी है। वे कविता को अभिजात पाठकीय वर्ग की निजी संपत्ति नहीं बनने देते। उनकी अनेक कविताएँ मंच, जनसभा और मौखिक पाठ में प्रभावशाली होती हैं। टेक, तुक, आवृत्ति, प्रश्नोत्तर और सीधा संबोधन उनकी कविता को सामूहिक स्मृति में प्रवेश करने योग्य बनाते हैं। राजनीतिक कविता की सफलता के लिए यह गुण महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रतिरोध तभी सामाजिक शक्ति बनता है जब वह केवल पुस्तक में बंद न रहकर लोगों की भाषा और स्मृति में जीवित रहे।

'हरिजन-गाथा' में नागार्जुन लोककथा, भविष्यवाणी, सामाजिक वृत्तांत और राजनीतिक स्वप्न को एक साथ संयोजित करते हैं। कविता का आधार दलितों के विरुद्ध हुई सामूहिक हिंसा है। आरंभिक अंश में पीड़ित समुदाय की स्त्रियों, अजन्मे बच्चों और जीवित जला दिए गए लोगों की त्रासदी सामने आती है—

"एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं—
तेरह के तेरह अभागे—
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिए गए हों
प्रचंड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन-संपन्न ऊँची जातियों वाले सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा!"[5]

इन पंक्तियों में 'मनुपुत्र' शब्द का प्रयोग तीखा व्यंग्य उत्पन्न करता है। हत्यारे और पीड़ित दोनों मनुष्य हैं, किंतु सामाजिक व्यवस्था ने उनके बीच ऐसी असमानता निर्मित कर दी है जिसमें साधन-संपन्न उच्च जातियाँ निर्धन दलितों को मनुष्य मानने से इनकार कर सकती हैं। कविता हिंसा को व्यक्तिगत वैमनस्य की घटना नहीं मानती; उसके पीछे जाति, भूमि, संपत्ति और प्रशासनिक निष्क्रियता का गठजोड़ दिखाई देता है।

कविता में थाने की निकटता और संभावित हिंसा की पूर्वसूचनाओं के बावजूद प्रशासन का निष्क्रिय रहना विशेष अर्थ रखता है। राज्य की हिंसा केवल वह नहीं जो पुलिस या सेना प्रत्यक्ष रूप से करती है। राज्य तब भी हिंसा में सहभागी होता है जब

वह प्रभावशाली समूहों द्वारा की जा रही हिंसा को जानते हुए रोकता नहीं। नागार्जुन जातिगत अत्याचार को राजनीतिक प्रश्न में रूपांतरित करते हैं। जाति यहाँ केवल सामाजिक रूढ़ि नहीं, बल्कि संसाधनों और सत्ता पर नियंत्रण की व्यवस्था है।

'हरिजन-गाथा' का अगला भाग शोक को प्रतिरोध के स्वप्न में बदलता है। नवजात दलित शिशु में संत गरीबदास भविष्य के विद्रोही नेता को देखते हैं—

"सबके दुख में दुखी रहेगा
सबके सुख में सुख मानेगा
समझ-बूझकर ही समता का
असली मुद्दा पहचानेगा।

अरे देखना इसके डर से
थर-थर काँपेंगे हत्यारे।"[6]

यह भविष्यवाणी पीड़ित समुदाय को निष्क्रिय करुणा का पात्र बनाए रखने से इनकार करती है। नवजात शिशु भविष्य की जनशक्ति का प्रतीक बन जाता है। वह किसी दैवी चमत्कार से उद्धार नहीं करेगा, बल्कि मजदूरों के बीच पलकर, युग की आँच में तपकर और सामूहिक शक्ति अर्जित करके संघर्ष करेगा। कविता में मिथकीय 'अवतार' की छवि आती है, किंतु उसका अर्थ लौकिक और राजनीतिक है। उद्धार किसी देवता से नहीं, दलित और श्रमिक समुदाय के भीतर विकसित नेतृत्व से संभव होगा।

फिर भी इस कविता की सीमाओं पर विचार करना आवश्यक है। हिंसा के प्रतिरोध में हथियारों और भावी विद्रोह के संकेत कई बार जटिल सामाजिक परिवर्तन को वीरतापूर्ण क्रांति की एकरेखीय कल्पना में बदल देते हैं। जाति-उन्मूलन, भूमि-संबंधों, संगठन और लोकतांत्रिक संस्थाओं की दीर्घ प्रक्रिया कविता की भविष्यवाणी में संक्षिप्त हो जाती है। फिर भी यह संक्षेप उस ऐतिहासिक क्षण में महत्त्वपूर्ण था जब दलितों को साहित्य में प्रायः दीन, करुण और निष्क्रिय रूप में चित्रित किया जाता था। नागार्जुन पीड़ा से प्रतिरोध और प्रतिरोध से नेतृत्व की संभावना निर्मित करते हैं। उनकी भाषा में कई बार अशिष्टता, अतिशयोक्ति और आक्रामकता दिखाई देती है। किंतु इसे केवल काव्य-दोष मान लेना पर्याप्त नहीं है। सत्ता स्वयं जब हिंसक, छलपूर्ण और निर्लज्ज हो, तब अत्यधिक संयत भाषा उस हिंसा की तीव्रता को छिपा सकती है। नागार्जुन का व्यंग्य भाषा पर स्थापित अभिजात नियंत्रण को तोड़ता है। उनकी कविता में सड़क, खेत, बाजार, सभा और अखबार की ध्वनियाँ प्रवेश करती हैं। यही बहुभाषिकता उनके राजनीतिक प्रतिरोध को जीवित और गतिशील बनाती है।

उपलब्धियाँ, वैचारिक अंतर्विरोध और समकालीन प्रासंगिकता

नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने राजनीतिक कविता को प्रचारात्मक नारा बनने से बार-बार बचाया। यद्यपि उनकी कुछ रचनाएँ नारे के अत्यंत निकट जाती हैं, उनकी श्रेष्ठ कविताओं में अनुभव, भाषा और राजनीतिक दृष्टि का सघन संयोजन मिलता है। 'अकाल और उसके बाद' में एक भी प्रत्यक्ष राजनीतिक नारा नहीं है, फिर भी वह भूख की संरचना पर लिखी गई अत्यंत प्रभावशाली राजनीतिक कविता है। 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' में तत्कालीन घटना का संदर्भ है, फिर भी उसका व्यंग्य किसी भी उत्तर-औपनिवेशिक सत्ता की मानसिक दासता पर लागू हो सकता है। 'मंत्र' राजनीतिक भाषा के खोखलेपन को पहचानती है, जबकि 'हरिजन-गाथा' जातिगत उत्पीड़न को वर्ग, भूमि और राजसत्ता से जोड़ती है।

नागार्जुन की जनपक्षधरता का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे जनता को केवल दुःखी और अभावग्रस्त रूप में नहीं देखते। उनके काव्य में जनता हँसती, व्यंग्य करती, संगठित होती और भविष्य की कल्पना करती है। जनचेतना में करुणा के साथ

क्रोध, विनोद, स्वाभिमान और प्रतिरोध भी सम्मिलित हैं। यह बहुआयामी दृष्टि उनके काव्य को दया-प्रधान सुधारवादी साहित्य से अलग करती है। जनता किसी उदार उद्धारक की प्रतीक्षा नहीं करती; वह स्वयं राजनीतिक परिवर्तन की संभावित वाहक है। इसके बावजूद नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं की कुछ स्पष्ट सीमाएँ हैं। तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं पर तीव्र प्रतिक्रिया के कारण कई कविताएँ समाचारपरक हो जाती हैं। जिन व्यक्तियों, चुनावों या आंदोलनों के संदर्भ तत्कालीन पाठक के लिए परिचित थे, वे बाद की पीढ़ियों के लिए ऐतिहासिक टिप्पणी की अपेक्षा कर सकते हैं। कुछ कविताओं में राजनीतिक आक्रोश इतना प्रत्यक्ष है कि अर्थ की बहुस्तरीयता कम हो जाती है। वहाँ व्यंग्य व्यक्ति-केंद्रित प्रतीत हो सकता है और संरचनात्मक आलोचना पीछे चली जाती है।

उनकी वैचारिक यात्रा भी पूर्णतः एकरेखीय नहीं थी। किसान आंदोलनों, वाम राजनीति, राष्ट्रवाद, समाजवादी धाराओं और विभिन्न जनांदोलनों से उनके संबंध बदलते रहे। उन्होंने कभी जिन राजनीतिक शक्तियों की प्रशंसा की, बाद में उन्हीं की आलोचना की। इसे अस्थिरता या अंतर्विरोध कहा जा सकता है, पर इसे जनहित की कसौटी पर राजनीति को परखने की स्वतंत्रता भी माना जा सकता है। नागार्जुन ने किसी दल को अपनी आलोचनात्मक चेतना का स्थायी स्वामी नहीं बनने दिया। फिर भी उनकी कुछ प्रतिक्रियाओं में तत्कालीन राजनीतिक आवेग विवेकपूर्ण दूरी पर भारी पड़ता दिखाई देता है।

इसी प्रकार वर्गीय दृष्टि की प्रबलता के कारण उनकी कुछ रचनाओं में लिंग, जाति और समुदाय की आंतरिक जटिलताएँ पर्याप्त विस्तार से नहीं खुलतीं। 'हरिजन-गाथा' जाति-आधारित हिंसा को अत्यंत तीव्रता से उठाती है, पर दलित जीवन की स्वायत्त सांस्कृतिक और वैचारिक आवाज अंततः कवि और संत गरीबदास की भविष्यवाणी के माध्यम से व्यक्त होती है। समकालीन दलित आलोचना के आलोक में पूछा जा सकता है कि पीड़ित समुदाय स्वयं किस भाषा में अपनी कथा कहता है और कवि की सहानुभूतिपूर्ण बाहरी दृष्टि की सीमा कहाँ है। यह प्रश्न नागार्जुन के योगदान को नकारता नहीं, बल्कि उसकी ऐतिहासिक स्थिति को अधिक संतुलित ढंग से समझने में सहायता करता है।

आज की परिस्थितियों में नागार्जुन की प्रासंगिकता कई स्तरों पर दिखाई देती है। लोकतांत्रिक राजनीति में व्यक्तिपूजा, प्रचार, वंशवाद, असहमति पर संदेह, प्रशासनिक दमन और राजनीतिक भाषा का खोखलापन आज भी समाप्त नहीं हुए हैं। इसी प्रकार भूख, किसान-संकट, असंगठित श्रम, जातिगत हिंसा और आर्थिक विषमता के प्रश्न भी नए रूपों में उपस्थित हैं। नागार्जुन का काव्य पाठक को यह सिखाता है कि लोकतंत्र में सरकार की आलोचना राष्ट्र-विरोध नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व का अनिवार्य हिस्सा है। उनका काव्य यह भी बताता है कि प्रतिरोध की भाषा केवल गंभीर और घोषणात्मक नहीं होती। हास्य, पैरोडी, लोकधुन, तुक, नाटकीय संवाद और व्यंग्य भी सत्ता की प्रतिष्ठा को चुनौती दे सकते हैं। सत्ता अपने चारों ओर भय और गरिमा का आभामंडल निर्मित करती है; व्यंग्य उस आभामंडल को तोड़कर उसे सामान्य मानवीय आलोचना के क्षेत्र में ले आता है। नागार्जुन का राजनीतिक व्यंग्य इसलिए लोकतांत्रिक है कि वह शासक को देवत्व या ऐतिहासिक अनिवार्यता प्रदान करने से इनकार करता है।

निष्कर्ष

नागार्जुन के काव्य में जनचेतना और राजनीतिक प्रतिरोध परस्पर अविभाज्य हैं। जनता के जीवन से वास्तविक संबद्धता उनकी राजनीतिक दृष्टि को आधार देती है और सत्ता-संरचनाओं की आलोचना उस संबद्धता को सक्रिय प्रतिरोध में बदलती है। उनके यहाँ जनता कोई अमूर्त भीड़ नहीं, बल्कि भूख से जूझता परिवार, श्रम से टूटता शरीर, अल्पवेतनभोगी कर्मचारी, भूमिहीन किसान, दलित समुदाय और राजनीतिक दमन का सामना करता नागरिक है। इस ठोस सामाजिक उपस्थिति के कारण उनकी कविता वैचारिक घोषणा के स्थान पर जीवित अनुभव से शक्ति ग्रहण करती है। नागार्जुन ने व्यंग्य, लोकभाषा, पैरोडी, आवृत्ति, संवाद और प्रत्यक्ष संबोधन के माध्यम से राजनीतिक कविता को व्यापक संप्रेषणीयता दी। उन्होंने औपनिवेशिक मानसिकता,

राजकीय प्रदर्शन, राजनीतिक अवसरवाद, दमन, जातिगत हिंसा और नारेबाजी की खोखली भाषा को निरंतर चुनौती दी। उनकी जनप्रतिबद्धता अंधसमर्थन पर आधारित नहीं है; उसमें जनता की अविवेकी भीड़, कवि के निजी व्यामोह और राजनीतिक आंदोलनों की सीमाओं की पहचान भी सम्मिलित है।

उनकी कुछ कविताओं में तात्कालिकता, घटनापरकता, व्यक्ति-केंद्रित व्यंग्य और सपाट राजनीतिक कथन की सीमाएँ अवश्य दिखाई देती हैं। वैचारिक स्थितियों में परिवर्तन और कुछ जटिल सामाजिक प्रश्नों का संक्षिप्तीकरण भी आलोचना की माँग करता है। फिर भी ये सीमाएँ उनके व्यापक साहित्यिक योगदान को कम नहीं करतीं। नागार्जुन ने हिंदी कविता को जनजीवन की ठोस भूमि, निर्भीक राजनीतिक भाषा और आत्मालोचनात्मक प्रतिबद्धता प्रदान की। उनका काव्य इस विश्वास को जीवित रखता है कि कविता सत्ता का अलंकरण नहीं, जनता की स्मृति, विवेक और प्रतिरोध की सक्रिय आवाज हो सकती है।

संदर्भ सूची

1. नागार्जुन, 'प्रतिबद्ध', राजेश जोशी (सं.), नागार्जुन रचना संचयन, नई दिल्ली, साहित्य अकादेमी, संस्करण 2017, पृ. 19
2. नागार्जुन, 'अकाल और उसके बाद', राजेश जोशी (सं.), नागार्जुन रचना संचयन, नई दिल्ली, साहित्य अकादेमी, संस्करण 2017, पृ. 100
3. नागार्जुन, 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी', नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृ. 101
4. नागार्जुन, 'मंत्र', नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृ. 110
5. नागार्जुन, 'हरिजन-गाथा', नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, भूमिका से
6. नागार्जुन, 'हरिजन-गाथा', नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007,